



**THE TIMES OF INDIA**

*Date: 07-12-17*

## Unease of farming

*RBI policy highlights farm woes, agriculture too needs ease of doing business*

### **TOI Editorials**



Expectedly, RBI's fifth monetary policy for the financial year left key interest rate unchanged at 6%. Its analysis showed that the central bank expects inflation rate to rise a tad over the next few months. But of more significance was the story coming out of the agricultural sector, the source of livelihood for close to half the population. Rural wage growth has weakened which, in turn, dragged down the overall growth in private consumption expenditure. In the July-September quarter consumption expenditure grew 6.5%, the weakest growth rate recorded in eight quarters.

The slowdown in rural wage growth is linked to the difficulty experienced in construction and manufacturing sectors. These segments provide seasonal employment to the rural population. Therefore, weak demand for labour in these sectors spills over into rural economy. To worsen the problem this year, food grain output for the kharif agricultural season has shrunk. Signals emerging from early data indicate that government needs to renew focus on the rural economy. The organising principles for rural economic policy ought to be similar to other sectors. Farmers are capable of making intelligent decisions once they have adequate information and are freed from stifling controls which distort prices. The way forward is to enable ease of doing farming. To illustrate, dairy activity is an important source of income diversification for farmers. Unfortunately, ill-considered laws on cow slaughter and a free rein to vigilante groups have harmed this segment. Indian agriculture cannot be asked to bear the burden of sentiments of urban politicians. If farmers are to get better returns, they need better infrastructure such as cold chains and better road networks. Most of all, they need the freedom to deal with an intermediary of their choice or the final consumer. Ease of doing business matters for rural India too.

---

**THE ECONOMIC TIMES**

*Date: 07-12-17*

## Errant sedition charges should be penalised

### **ET Editorials**



Madhya Pradesh police's arrest and, later, release on discovering insufficient evidence, of five people on suspicion of sedition is the latest example of the gross misuse of this penal provision. The National Crime Records Bureau reported 35 cases of sedition in 2016. In 2015, Tamil Nadu charged singer and songwriter Kovan with sedition, for the crime of ridiculing J Jayalalithaa as part of a political critique. Books that fall foul of mainstream opinion get their authors arrested on the charge of sedition. Protesting students are charged with sedition. All this amounts to misuse of the provision and, given the tendency for undertrials to stay

in jail for indefinite periods, serious violation of human rights. This must stop.

The Supreme Court has clarified, time and again, that the charge of sedition will subsist only when instigation to proximate violence is involved. Holding a poster, shouting a slogan or singing a song, however provocative, does not amount to sedition. The point can be made in any court of law, without much difficulty. However, by the time prosecution against someone locked up for sedition reaches a point where a judge who understands what the Supreme Court has said on the subject hears the legal defence, months or years of imprisonment would have transpired. It is all the more troubling that the majority of those accused of sedition are from marginal sections of society. This is wholly unbecoming of a democracy. Things must change.

In the first place, the Supreme Court must pass the word down the ranks of the judiciary that framing charges of sedition without reasonable chances of meeting the condition laid down by the Supreme Court for the charge to hold would meet with stern disapproval. Two, bail, rather than its denial, must be the norm for undertrials.

---

## बिज़नेस स्टैंडर्ड

*Date: 07-12-17*

### उचित सतर्कता

#### संपादकीय

भारतीय रिजर्व बैंक (आरबीआई) की मौद्रिक नीति समिति (एमपीसी) की दो दिवसीय बैठक के अंत में यह घोषणा की गई कि मुख्य रीपो दर 6 फीसदी पर बरकरार रखी जाएगी। सरकार भी इस निष्कर्ष से निराश होगी। हालांकि यह घोषणा उम्मीद के मुताबिक ही है। हाल ही में प्रधानमंत्री की पुनर्गठित आर्थिक सलाहकार परिषद के दो सदस्यों ने एमपीसी की बैठक के ऐन पहले यह दलील दी थी कि वास्तविक ब्याज दरें आर्थिक सुधार में स्थायित्व लाने की दृष्टि से बहुत ज्यादा हैं। उन्होंने कहा था कि मुद्रास्फीति को लेकर आरबीआई का नजरिया उच्च उत्पादन को त्यागने पर मजबूर कर रहा है।

बहरहाल, यह देख पाना मुश्किल है कि एमपीसी के पास इसके अलावा क्या विकल्प शेष थे? आरबीआई अब औपचारिक रूप से खुदरा महंगाई को लक्षित कर रहा है। यह दुनिया भर में अपनाए जा रहे सर्वश्रेष्ठ तौरतरीकों के अनुरूप ही है। हालांकि हाल के वर्षों में मुद्रास्फीति का अनुमान बढ़ाचढ़ाकर लगाने के लिए इसकी निरंतर आलोचना हुई है लेकिन इस मौके पर ऐसा कोई आरोप नहीं मढ़ा जा सकता है। अक्टूबर में पिछले नीतिगत वक्तव्य के बाद से खुदरा महंगाई का अनुमानित स्तर बढ़कर 3.58 फीसदी हो गया। यह पिछले सात महीनों में सबसे तेज बढ़ोतरी थी। इसके लिए खाद्य और ईंधन कीमतों में बढ़ोतरी जिम्मेदार थी। आरबीआई ने कहा था कि आम घरों का उसका सर्वेक्षण बताता है कि मुद्रास्फीति के अनुमान मजबूत हो रहे हैं। ऐसे में मुद्रास्फीति के दायरे को लेकर उसका चिंता जताना नितांत स्वाभाविक है। एमपीसी के वक्तव्य में कहा गया है कि खाद्य और ईंधन को छोड़ दिया जाए तो महंगाई में आई कमी का रुझान बदल गया है। उसने यह भी कहा कि हाल के दिनों में सरकारी कर्मचारियों के लिए नए आवास भत्ते के क्रियान्वयन के बाद यह भी महंगाई का बड़ा स्रोत रहा। उसने यह भी कहा कि यह रुझान भी आगे बरकरार रह सकता है। इसे देखते हुए और 4 फीसदी महंगाई के लक्ष्य के साथ समिति के लिए दरों में कमी करना तो नामुमकिन ही था।

यह बात भी ध्यान देने लायक है कि समिति का साफ तौर पर यह मानना है कि वृहद आर्थिक हालात ब्याज दर में कटौती के लायक नहीं हैं। यह वक्तव्य तब आया है जबकि मोटे तौर पर यह माना जा रहा था कि अर्थव्यवस्था में सुधार हो रहा है। हालांकि जुलाई- सितंबर तिमाही में निजी व्यय में आठ महीनों के सबसे धीमे वृद्धि स्तर जैसे खतरे सामने थे। एमपीसी ने इन्सॉल्वेंसी ऐंड बैंकक्रप्टसी की गति, बाजार से पूंजी जुटाने में बढ़ोतरी और विश्व बैंक के कारोबारी सुगमता सूचकांक में भारत की 30 स्थानों की छलांग के निवेशकों पर असर का जिक्र खासतौर पर किया।

वृद्धि दर में सुधार भले ही हो रहा हो लेकिन ऐसे संकेत भी थे कि आरबीआई कर व्यवस्था में बदलाव, सरकारी अधिकारियों के वेतन भत्तों में बदलाव और तमाम कृषि ऋण माफियों के चलते राजकोषीय घाटे के मोर्चे पर फिसलन को लेकर भी सचेत था। केंद्र सरकार को इस चेतावनी को गंभीरता से लेना चाहिए। मुद्रास्फीति से जुड़े अनुमानों, वृद्धि में सुधार और राजकोषीय मोर्चे पर व्याप्त खतरों को देखें तो नीतिगत दरों में कोई बदलाव न करने का निर्णय समझदारी भरा है। यह भी संभव है कि अर्थव्यवस्था में मांग धीरे-धीरे वापस लौट आए। ऐसे में कहा जा सकता है कि शायद दरों में कटौती का अवसर अब जा चुका है। दरों पर बढ़ोतरी के फैसले से ज्यादा महत्त्वपूर्ण आरबीआई का बैंकों के लिए वे शर्तें तय करने का फैसला था, जो बैंकों को पुनर्पूजीकरण बॉन्ड के लिए स्वीकार करनी होंगी।

## वंशवाद की विष-बेल

संपादकीय



कांग्रेस अध्यक्ष पद के लिए राहुल गांधी के नामांकन दाखिल करने के साथ ही एक बार फिर भारतीय राजनीति में वंशवाद का मुद्दा राजनीतिक विमर्श के केंद्र में आ गया है। इसमें दो राय नहीं हो सकती कि किसी भी राजनीतिक दल या संगठन के शक्ति के ढांचे में एक परिवार मुख्य बन जाता है, तो उस दल में एक तरह की तानाशाही स्थापित होने का भय रहता है। इसके कारण उस दल में आंतरिक लोकतंत्र एक सिरे से नदारद हो जाता है। आम तौर पर यह देखा गया है कि वंशवाद का फैलाव केवल उस संगठन में या उस राजनीतिक तंत्र में नहीं होता जहां वैचारिक आधार बहुत महत्वपूर्ण होता है।

साम्यवादी चीन, लोकतांत्रिक अमेरिका और इंग्लैंड इसके उदाहरण हैं। जाहिर है कि इन देशों में विचारधारा प्रमुख है, और व्यक्ति गौण है। जहां लोकतंत्र मजबूत है, और विचारधारा प्रमुख है, वहां जो व्यक्ति उस विचार को मजबूत बनाने में, विचार के आधार पर संगठन को मजबूत बनाने में और अपने वैचारिक पक्ष को जनता के समक्ष रखने में जितना ज्यादा सफल और सक्षम होता है, वही व्यक्ति उस संगठन के कार्यकारी पदों पर आसीन होता है। इसलिए वहां वंशवाद का फैलाव संभव ही नहीं है। अमेरिका में ओबामा वंशवाद की देन नहीं थे, और उनके हटने के बाद उनकी पत्नी और बच्चे राजनीति में नहीं आए। लेकिन यह भारत का दुर्भाग्य है कि यहां कोई भी राजनीतिक विचारधारा मजबूती से स्थापित ही नहीं हो सकी है। यही कारण है कि कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक कुछ अपवादों को छोड़कर राजनीति में वंशवाद पूर्णतः फलता नजर आ रहा है। सिर्फ कांग्रेस पार्टी ही नहीं समाजवादी पार्टी, राष्ट्रीय जनता दल, इनेलो, द्रमुक और यहां तक कि वंशवाद की सबसे बड़ी आलोचक भाजपा भी इससे अछूती नहीं है। चूंकि भारत में अब राजनीति समाज सेवा नहीं रही बल्कि यह एक बड़ा उद्योग बन गया है, इसलिए प्रायः सभी दलों के प्रमुख नेता अपने पुत्र और पुत्रियों को राजनीति में लाने का मार्ग प्रशस्त करते हैं। इसलिए वंशवाद की चाहे जितनी भी आलोचना कर ली जाए लेकिन राजनीति में इससे मुक्त होने की कोई राह दिखाई नहीं देती। अगर ऐसा ही चलता रहा तो भारतीय राजनीति सौ-दो सौ परिवारों तक सीमित होकर रह जाएगी। और यह बात लोकतंत्र के लिए सबसे घातक होगी। भारतीय लोकतंत्र को वंशवाद से बचाने के लिए सभी दलों को आगे आना होगा।

## जनसत्ता

Date: 06-12-17

### न्याय का तंत्र

विधि मंत्रालय ने अपने एक दस्तावेज में फिर यह बात कही है कि जजों के ढेर सारे पद खाली हैं

संपादकीय

भारत में अदालतों में जजों की भारी कमी और दो करोड़ से ज्यादा मुकदमे लंबित होने के आंकड़े सिर्फ रस्मी तौर पर दोहराए जाते हैं। संवेदनशील और जागरूक लोगों के लिए यह एक बेचैन करने वाली खबर होती है, मगर हमारी सरकारों के कानों पर जूं तक नहीं रेंगती। न्यायशास्त्र के इस सूत्रवाक्य, 'न्याय में देरी करना, न्याय को नकारना है' को संपुट की तरह हर बार दोहराया जाता है। विडंबना यह है कि सोच-विचार बहुत होता है लेकिन उस पर अमल नहीं के बराबर। विधि मंत्रालय ने अपने एक दस्तावेज में फिर यह बात कही है कि जजों के ढेर सारे पद खाली हैं। इस दस्तावेज के मुताबिक 22,288 पद स्वीकृत हैं; इनमें से 4,937 पद खाली हैं। 2010 में 16,949 पद ही स्वीकृत थे, जिन्हें 2016 में बढ़ाया गया था। कहने के लिए पदों की संख्या तो बढ़ा दी गई लेकिन व्यवहार में इसका कोई लाभ नहीं हुआ, क्योंकि पद भरे ही नहीं गए। लिहाजा, मुकदमों की सुनवाई की रफ्तार जैसी थी, वैसी ही बनी रही। जजों की कमी के अलावा, स्वीकृत पदों के हिसाब से आवासीय सुविधाएं और न्यायालय कक्षों की भी भारी कमी है। ये सारी स्थितियां ऐसी हैं, जो मुकदमों के बरस-दर-बरस खिंचते रहने का सबब बनती हैं। मुकदमे के घिसटते रहने से जेलों पर भी बेजा बोझ पड़ता है। बहुत सारे विचाराधीन कैदी फैसले के इंतजार में जेल में सड़ने को विवश रहते हैं।

छोटे-मोटे मुकदमे, जो लघु वाद कहे जाते हैं और जिनका कुछ ही सुनवाईयों में शीघ्र निपटारा हो सकता है, निचली अदालतों में कई-कई साल लटके रहते हैं। इसके बाद हाइकोर्ट और सुप्रीम कोर्ट में मुकदमे और भी लंबे खिंचते हैं। ऐसे में न्याय का क्या अर्थ रह जाता है? भारतीय न्यायपालिका की समस्याओं और नियुक्तियों आदि को लेकर विधि आयोग ने 1987 में अपनी रिपोर्ट दी थी, जिसमें जजों की संख्या प्रति दस लाख की आबादी पर अठारह से बढ़ा कर पचास करने की संस्तुति की थी। अमेरिका में दस लाख की आबादी पर जजों की संख्या डेढ़ सौ है, जबकि भारत में यह अनुपात बारह का है। इससे अंदाजा लगाया जा सकता है कि न्यायिक तंत्र के मामले में भारत तुलनात्मक रूप से कहां खड़ा है। न्यायशास्त्री हों या समाजशास्त्री, सबका यही कहना है कि त्वरित और सस्ते न्याय के बगैर किसी सभ्य समाज या राष्ट्र की कल्पना नहीं की जा सकती।

आजकल देश में 'विकास' शब्द पर बहुत जोर है। अप्रैल 2016 में दिल्ली में हुए मुख्यमंत्रियों और मुख्य न्यायाधीशों के एक सम्मेलन में भारत के तत्कालीन प्रधान न्यायाधीश तीरथ सिंह ठाकुर ने कहा था, 'न्यायपालिका की क्षमता और देश के विकास के बीच गहरा नाता है।' उस कार्यक्रम में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी भी मौजूद थे। प्रधान न्यायाधीश भावुक हो उठे थे और उन्होंने यहां तक कहा, 'कॉन्फ्रेंसों और सेमिनारों में बहुत चर्चा होती है, लेकिन कुछ होता नहीं। केंद्र सरकार कहती है कि वह वचनबद्ध है और राज्य सरकारें कहती हैं कि पहले केंद्र सरकार को धनराशि देने दीजिए।' इस दुखद प्रसंग के बाद भी हालत में कुछ सुधार नहीं हुआ है। ऐसे में सवाल उठता है कि विकास की वह कौन-सी परिभाषा है, जो अपने न्यायतंत्र को दरकिनार करके गढ़ी जा सकती है!

Date: 06-12-17

**चाबहार की अहमियत**

चाबहार होकर भारत को अफगानिस्तान जाने का एक रास्ता मिला है। वहीं अफगानिस्तान का व्यापार भी दुनिया के बाकी हिस्सों से बढ़ेगा। लेकिन सबसे ज्यादा लाभार्थी ईरान होगा। भविष्य में ईरान इसे उत्तर-दक्षिण परिवहन गलियारे से जोड़ेगा जो यूरोप तक जाता है। ईरान की भविष्य की योजना चीन के 'वन बेल्ट वन रोड' के लिए चुनौती है।

### संजीव पांडेय

भारत-ईरान संबंधों में उतार-चढ़ाव के बीच तीन दिसंबर को चाबहार बंदरगाह के पहले चरण का उद्घाटन हो गया। चाबहार के पहले चरण की शुरुआत भारत-ईरान संबंधों में भी एक नए अध्याय की शुरुआत है। ईरान के राष्ट्रपति हसन रुहानी इस बंदरगाह का उद्घाटन किया। अब भारत, पाकिस्तान को छोड़, सीधे अफगानिस्तान और मध्य एशिया से व्यापारिक रिश्ते कायम कर सकेगा। बंदरगाह की शुरुआत पश्चिम और मध्य पूर्व एशिया की कूटनीति को सीधे प्रभावित करेगी। क्योंकि अब ईरान का कद यूरोशिया की सीमा तक बढ़ गया है। पाकिस्तान तो चिंतित है ही, चिंता चीन को भी होगी। ईरान इस बंदरगाह के व्यापारिक इस्तेमाल से जहां मजबूत आर्थिक शक्ति बनेगा, वहीं चीन द्वारा पाकिस्तान के तट पर विकसित ग्वादर बंदरगाह के लिए चुनौती भी। मध्य एशिया और पश्चिम एशिया की कूटनीति में सऊदी अरब के नेतृत्व वाले सुन्नी गठबंधन को लगातार चुनौती दे रहा ईरान इस समय किसी को भी आंख दिखाने की स्थिति में है। सीरिया, यमन, लेबनान में अपने सफल हस्तक्षेप के बाद ईरान ने दुनिया को यह संदेश दिया है कि पश्चिम एशिया और मध्य-पूर्व एशिया में उसे कमजोर आंकना ठीक नहीं है।

चाबहार होकर भारत को अफगानिस्तान जाने का एक रास्ता मिला है। वहीं अफगानिस्तान का व्यापार भी दुनिया के बाकी हिस्सों से बढ़ेगा। लेकिन सबसे ज्यादा लाभार्थी ईरान होगा। भविष्य में ईरान इसे उत्तर-दक्षिण परिवहन गलियारे से जोड़ेगा जो यूरोप तक जाता है। ईरान की भविष्य की योजना चीन के 'वन बेल्ट वन रोड' के लिए चुनौती है। ईरान दुनिया को यह बताने में कामयाब रहा है कि ओमान की खाड़ी और हिंदी महासागर से मध्य एशिया और यूरोप तक पहुंचने का एक महत्त्वपूर्ण रास्ता ईरान है। चाबहार चीन के अलावा अमेरिका के लिए भी एक संदेश है। क्योंकि ईरान से खराब संबंध ने अमेरिका को पाकिस्तान पर निर्भर बना दिया। आज भी अमेरिका अफगानिस्तान में नाटो सैनिकों तक सैन्य साजो-सामान पहुंचाने के लिए कराची बंदरगाह पर निर्भर है। अमेरिका की इसी कमजोरी का लाभ पाकिस्तान ने अकसर उठाया है।

चाबहार के पहले चरण के उद्घाटन ने पाकिस्तान की चिंता बढ़ाई है। भारत को अफगानिस्तान तक पहुंचने का आसान रास्ता मिल गया है। पाकिस्तान का आरोप है कि भारत चाबहार के रास्ते अफगानिस्तान पहुंच पाकिस्तान को घेरेगा। भारत पाकिस्तान को दोनों सीमाओं पर घेरने की योजना में है। पाकिस्तान और चीन दोनों मजबूरी में चाबहार में घुसपैठ करना चाहते हैं। उधर ईरान संतुलन साधने की रणनीति पर है। अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप ईरान के प्रति लगातार सख्त हो रहे हैं। सऊदी अरब के दबाव में वे ईरान से हुए परमाणु करार को एकतरफा रद्द करने की बात कर रहे हैं। यही कारण है कि चाबहार खोलने का मतलब यह नहीं है कि ईरान भारत के प्रति खासा उदार हो गया है। ईरान भारत से अपनेसंबंधों को व्यावहारिकता के आधार पर तय करेगा। ईरान की व्यावहारिक कूटनीति ने उसे इराक, सीरिया और लेबनान में मजबूत किया। कतर जैसा सुन्नी देश सऊदी अरब से विद्रोह कर ईरान से संबंध बढ़ाने को तरजीह दे रहा है।

भारत, आस्ट्रेलिया, जापान और अमेरिका के चतुर्भुज गठबंधन पर ईरान की नजर है। ईरान खुले पर तौर पर भारत-अमेरिका की बढ़ती नजदीकियों पर कोई प्रतिक्रिया नहीं दे रहा है, लेकिन व्यवहार में वह भारत को समय-समय पर झटका देने में संकोच नहीं करता। ईरान ने फरजाद बी गैस क्षेत्र से गैस निकालने का अधिकार भारतीय कंपनी ओएनजीसी-विदेश को देने के बजाय एक रूसी कंपनी को दे दिया। कूटनीति के जानकारों के अनुसार भारत को ईरान ने जानबूझ कर झटका दिया। जबकि ओएनजीसी विदेश लिमिटेड ने इस गैस क्षेत्र में दिलचस्पी दिखाई थी। गौरतलब है कि इस गैस क्षेत्र की खोज भारतीय कंपनी ने की थी। ईरान ने भारत को झटका देते हुए तर्क दिया कि गैस क्षेत्र की खोज और अनुसंधान तक का अधिकार भारतीय कंपनी के पास है। इसलिए गैस निकालने का काम वह रूसी कंपनी को दे रहा है। हालांकि भारत ने इस गैस क्षेत्र में 11 अरब डॉलर के निवेश का प्रस्ताव दिया था। यही नहीं, भारत-अमेरिका की बढ़ती नजदीकियों के मद्देनजर ईरान ने भारत को तेल सौदों में दी गई कुछ छूट भी वापस ले ली थी।

दक्षिण पूर्व एशिया में अमेरिका के साथ अहम सहयोगी की भूमिका निभा रहे भारत को रूस-ईरान गठजोड़ पर ध्यान रखना होगा। क्योंकि ईरान की नाराजगी भारत की परेशानी का सबब बन जाएगी। अफगानिस्तान से लेकर मध्य एशिया तक के व्यापारिक रास्ते भारत के लिए ईरान ही खोल सकता है। पाकिस्तान भारत के लिए अफगानिस्तान का रास्ता आज भी खोलने को तैयार नहीं है। वैसे में भारत के लिए चाबहार के अलावा कोई और दूसरा रास्ता नहीं है। भारत को यह सावधानी बरतनी होगी कि यहां चीन और पाकिस्तान घुसपैठ करने को तैयार हैं। अगर मध्य एशिया और पश्चिम एशिया में भारत को अपने महत्त्व को बनाए रखना है तो ईरान से संबंध मधुर रखने ही होंगे। सऊदी अरब के तमाम अहसानों के बावजूद पाकिस्तान ईरान से संबंध खराब करने को तैयार नहीं है। पाकिस्तान ईरान के महत्त्व को समझता है। पाकिस्तान की एक बड़ी सीमा ईरान से लगती है। पाकिस्तान अच्छी तरह जानता है कि इस समय अफगान-तालिबान के कमांडरों की ईरान में काफी घुसपैठ है। अफगान-तालिबान के नेता ईरान के संपर्क में हैं। इसका खुलासा अमेरिकी मीडिया ने भी किया है। चीन की चिंता अलग है। चीन-पाकिस्तान आर्थिक कॉरिडोर का एक बड़ा हिस्सा पाकिस्तान के बलूचिस्तान प्रांत में है, जिसकी सीमा ईरान के साथ लगती है। ग्वादर बंदरगाह भी बलूचिस्तान में स्थित है। ईरान से खराब संबंध सीधे चीनी निवेश को प्रभावित करेगा। बलूच विद्रोही पहले ही चीन-पाकिस्तान आर्थिक कॉरिडोर का विरोध कर रहे हैं। यही कारण है कि पाकिस्तान आतंकवाद के खिलाफ सऊदी अरब के नेतृत्व में बने 41 देशों के संयुक्त सैन्य गठबंधन में शामिल होने के बावजूद ईरान से अपने संबंधों को मधुर बनाए हुए है। इस गठबंधन में सीरिया, ईरान और इराक नहीं हैं। ईरान इस गठबंधन का घोर विरोधी है।

अफगानिस्तान भी ईरान की बढ़ती ताकत को समझ रहा है। अफगानिस्तान को पता है कि ईरान शुरू से ही उसके आंतरिक मामलों में दखल देता रहा है। क्वेटा-कंधार-अश्काबाद आर्थिक गलियारा जो पाकिस्तान से अफगानिस्तान के रास्ते तुर्कमेनिस्तान जाता है, उस पर ईरान की नजर काफी समय से है। यह आर्थिक गलियारा ईरान की सीमा से लगते हुए तुर्कमेनिस्तान को जाता है। इस गलियारे पर कब्जा करने की कोशिश पाकिस्तान ने भी की, लेकिन ईरान ने उसे सफल नहीं होने दिया। ईरान समय-समय पर इस गलियारे पर नियंत्रण के लिए स्थानीय अफगान आबादी, तालिबान और अन्य गुटों को आर्थिक और सैन्य मदद देता रहा है। अफगानिस्तान में इस समय ईरान फिर सक्रिय है। हाल ही में पश्चिमी मीडिया में इस तरह की खबरें आई हैं। खबरों के मुताबिक अफगान-तालिबान के लड़ाके ईरानी सेना से प्रशिक्षण ले रहे हैं। वे क्वेटा से सीधे ईरान की सीमा में जाते हैं। उन्हें आर्थिक मदद भी मिलती है। अफगानिस्तान के फरह में नाटो सेना और तालिबान की लड़ाई में मारे गए तालिबानी लड़ाकों के बीच कुछ ईरानी सैनिकों के शव भी मिले। खबरों के मुताबिक अफगानिस्तान के हेलमंड, कंधार, हेरात प्रांतों में ईरानी सैनिक सीधे हस्तक्षेप कर रहे हैं। इसके बावजूद अफगानिस्तान के राष्ट्रपति अशरफ घनी ईरान से अच्छे संबंधों की वकालत कर रहे हैं, क्योंकि अफगानिस्तान को बाहरी

दुनिया से व्यापारिक पहुंच के लिए चाबहार बंदरगाह की जरूरत है। अफगान-पाक संबंध इस कदर खराब है कि पाकिस्तान अफगान सीमा की बाड़बंदी में लग गया है।



*Date: 06-12-17*

## Invitation To A Jugalbandi

*Only a cooperative effort of the state and community can protect India's heritage*

**Narayani Gupta, [The writer is a historian of Delhi]**

December in Delhi is when the migratory birds fly in, as do foreign scholars. Some of these will be part of the General Assembly of the International Council on Monuments and Sites (ICOMOS), which opens on December 11. Since 1965, ICOMOS has worked with Unesco on World Heritage Sites. Its members are “heritage-ists” — gardeners, stone masons, architects, community leaders, historians, restorers, and a hundred other people with distinct skills. What is truly energising about “heritage” is that while it has always been with us, its frontiers, both conceptual and geographical, keep expanding. For Indians, the conference will provide perspective, and the clarity to recognise those who take care of our beautiful landscapes and edifices. It will make them think, with examples like Romania before them, of the frightening ease with which these can be destroyed, and along with them, the spirit of pluralism, our country’s “outstanding universal value” (the term which has to be carefully defined at each of Unesco’s World Heritage Sites). The theme for this year’s symposium is “Heritage and Democracy”. This has four sub-themes: How diverse communities can be involved in the task of heritage management, how cultural heritage can be used to bring about peace and reconciliation, how digital media can be used to “protect” and interpret cultural heritage, and the need to explore people’s relationships with natural landscapes.

In India, we have seen how our democratically-elected governments have not been able to halt the slow atrophy of our heritage by neglect — few officials are passionate enough to invest time and thought on their charge, to have a sense of urgency and to go the extra mile. It does not help that the Ministry of Culture controls the Archeological Survey of India, and the Ministry of Urban Development oversees “heritage”. Peace and reconciliation have been seen in terms of political and diplomatic moves, but “heritage” could be made a regular component of Track II diplomacy. T.M. Krishna’s concert in Jaffna in 2011 did in one evening what years of talks could not.

“Interpretation centres” are often promised in proposals connected with monuments. But “interpretation” is not easy. An interpretation centre is not a random collection of objects and photographs. A clear, honest narrative is needed, as also a subtle way of instilling in the viewer a sense of empathy for something from another time or of another people. The services of a creative writer or artist is needed as much as that of the archaeologist. ICOMOS’ call to turn away from the centuries-old exhortation to “tame the land” and connect with “natural landscapes” has to be echoed in India, where urbanisation is flattening out and draining the resources of mountain, desert and coastal areas. We need many Komal Kotharis, who will seek understand the relations between natural landscapes and the



ecology and cultures they create, carrying echoes of traditional myths as well as the struggles in the lives of the people.

Make real the ideal — of official agencies sharing the care of monuments with local communities (plural, and not in the corrupted sense where a “community” is equated with a religion), of seeing animosities melting away, conversation becoming more open-minded and interesting, presenting history, cultural expressions and skill development through carefully-designed interpretation centres, respecting India’s natural landscape. Democracy in its most liberal sense should underpin the protection of heritage. But the hierarchical and disaggregated forms of democracy have discouraged individual initiative. Democracy is powerless to change a mindset, to make us shed our individual egos and develop a sense of exhilaration in working together. This was what distinguished our nationalist movement, that fires organisations like SPIC-MACAY. Our administrators, historians, architects, need to be charged with the sense of co-operative effort embodied for centuries — by the panchala (the five smiths) who have fashioned India’s monuments, and by the jugalbandi of carpenter, artist and musician across the country, from Manipur to Rajasthan, who perform for us. What an advantage India has, which many countries lack, where traditional crafts have vanished.



*Date: 06-12-17*

## **New India formula?**

*The 15th Finance Commission’s job will be especially tricky in the time of GST*

### **EDITORIAL**

The Centre has moved swiftly to notify the presidential order setting up the Fifteenth Finance Commission, within five days of the Cabinet’s approval. The constitutional body is tasked with recommending a fiscal road map and a sharing of resources between the Centre and the States. On Monday, former Revenue Secretary N.K. Singh, who has been appointed chairman of the Commission, held preliminary discussions on its “wide-ranging” terms of reference and decided to hold expeditious consultations with stakeholders at all administrative levels as well as with political parties. Think tanks and academics will be consulted. The Commission has less than two years to complete its deliberations and submit its report by October 2019, giving the government a little over a quarter to consider and implement its recommendations for the period from April 2020 to March 2025. Accepting the 14th Finance Commission’s recommendation to raise the States’ share in the divisible pool of taxes to 42% from the previous 32% level, Prime Minister Narendra Modi had told Chief Ministers that although this meant less money at the Centre’s disposal, his government had decided to strengthen the States’ capacity to move away from a ‘one-size-fits-all’ approach. While Mr. Modi’s disdain for Central planning is well-known, the terms of reference for this Commission seem to suggest that the record hike in the tax transfer rate to States is pinching.

The Centre has urged the Commission to finalise its tax-devolution formula after factoring in the impact on the Union’s fiscal situation, keeping in mind “the continuing imperative of the national development programme including New India – 2022”. Taken together with its need for resources for essential spending in areas such as defence, security, infrastructure and climate change, the Centre seems to be seeking a rollback of the 42% share for States. The government’s top brass has repeatedly asserted the need for revenue to maintain public spending in the face of flak for high petroleum taxes. But a reduction from the 42% rate could dent States’ faith in the Centre’s claims of cooperative federalism. The rollout of the goods and services tax, which marks a new chapter in tax administration with both the Centre and States working together through the GST Council, makes the challenge trickier. The Centre is committed to compensating States for any revenue losses arising out of GST implementation till June 2022, thus covering nearly half the period for which the Commission is to recommend a formula. Its mandate includes formulating performance-linked incentives for States on a range of desirable outcomes such as attaining a replacement rate in population growth, deepening the GST net and improving the ease of doing business. Devising a fiscal nudge for development goals sounds attractive, though the challenge would lie in quantifying the good from the ugly — especially when one has to reward a State for showing ‘control or lack of it in incurring expenditure on populist measures’.

---